Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 1 | May 2025 - October 2025 | pp. 1-5

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शिक्षा दर्शन

Research Reinforcement
ISSN 2348-3857

प्रो. मनोज चतुर्वेदी

पूर्व अध्यक्ष, पंडित दीनदयाल उपाध्याय पीठ हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश)

डॉ. प्रेरणा चतुर्वेदी

सीनियर फेलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली (दिल्ली)

शोध सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय लेखक, विचारक, व्यंग्यकार, पत्रकार, संपादक, अर्थशास्त्री, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक तथा भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। उनका चिंतन सर्व समावेशी चिंतन है जिसके केंद्र में संपूर्ण ब्रह्मांड निहित हैं। वे एक राजनेता के साथ ही साथ शिक्षाविद् भी थे उन्होंने शिक्षा के केंद्रों में, मिशनरियों की शिक्षा तथा औद्योगिकी शिक्षा के क्षेत्र में जो भी कमियां थी, उसे रचनात्मक, बौद्धिक और आंदोलनात्मक रूप से दूर करने का प्रयास किया। भारतीय अर्थव्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था के क्षेत्र में भारत परमुखापेक्षी था। दीनदयाल उपाध्याय के मन में यह व्यथा थी कि भारतीय स्वाभिमान जागरण के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन करना होगा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ऐसी शिक्षा पद्धति चाहते थे, जिसके केंद्र में स्वावलंबन, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान हो। केंद्र की नरेंद्र मोदी सरकार कौशल विकास पर अत्यधिक जोर दे रही है जिसका सकारात्मक परिणाम भी दिखाई दे रहा है। इस शोध-पत्र में उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन का दार्शनिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और व्यावहारिक विश्लेषण किया गया है। इसमें स्वदेशी, कौशल-आधारित शिक्षा, शिक्षक-व्यवहार, अनिवार्य सैन्य प्रशिक्षण, विश्वविद्यालयों की भूमिका, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक अस्मिता, धर्मांतरण और मिशनरी शिक्षा के प्रभाव जैसे विषयों का विस्तार से अध्ययन किया गया है। शोध-लेख यह सिद्ध करता है कि उपाध्याय जी का शिक्षा-दर्शन मात्र अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि आज के भारत के लिए भी उतना ही प्रासंगिक, प्रेरणादायक और मार्गदर्शक है।

संकेताक्षर—*समग्र विकास, समावेशी शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय सांस्कृतिक विरासत*

प्रस्तावना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय (1916-1968) भारतीय राजनीतिक विचारधारा के ऐसे हस्ताक्षर थे, जिन्होंने राष्ट्रीय नीति, सामाजिक संरचना और शिक्षा के व्यापक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे लेखक, पत्रकार, राजनेता, अर्थशास्त्री और दार्शनिक होने के साथ-साथ RSS के वरिष्ठ प्रचारक और जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी थे। उनका चिंतन पाश्चात्य प्रतिमानों का अनुकरण नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान-विमर्श की परंपरा से उपजा एकात्म मानववाद है, जो संपूर्ण मानवता को एक जीवंत इकाई के रूप में देखता है।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर औपनिवेशिक काल के गहरे प्रभाव को वे राष्ट्रीय उन्नति की सबसे बड़ी बाधा मानते थे। वे कहते थे कि अंग्रेजों ने शिक्षा व्यवस्था को इस तरह बदला कि भारतीय "शासक" नहीं, बल्कि "शासित" बनने में गर्व महसूस करने लगे। उनके विचार में शिक्षा एक स्वतंत्र राष्ट्र की आत्मा का निर्माण करती है। आज के संदर्भों में जब भारतीय शिक्षा व्यवस्था NEP 2020, कौशल-विकास, मातृभाषा-आधारित शिक्षण और सांस्कृतिक पुनर्स्थापना की ओर अग्रसर है, दीनदयाल उपाध्याय जी का शिक्षा-दर्शन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शिक्षा-दर्शन

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का शिक्षा-दर्शन भारतीय सांस्कृतिक विरासत, नैतिक मूल्यों, स्वदेशी चेतना, आत्मनिर्भरता और

ISSN 2348-3857

राष्ट्र-केन्द्रित दृष्टि का एक अनूठा समन्वय है। वे शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि मनुष्य, समाज और राष्ट्र—तीनों के विकास की आधारशिला मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति को उसके परिवेश, सांस्कृतिक परंपरा, प्रकृति और राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुकूल ढाले। उन्होंने औपनिवेशिक शिक्षा-पद्धति की कमियों को पहचाना और भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप एक वैकल्पिक, स्वदेशी शिक्षा-दर्शन प्रस्तुत किया। उनके शिक्षा-दर्शन के मूल तत्व निम्न प्रमुख आधारों पर खड़े हैं—

शिक्षा का मूल उद्देश्य : राष्ट्रनिर्माण और चरित्र निर्माण

उपाध्याय जी मानते थे कि शिक्षा का सर्वोपरि लक्ष्य मानव का समग्र विकास है—न केवल बौद्धिक, बल्कि नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक विकास भी। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल "पढ़ा-लिखा मानव" बनाना नहीं, बल्कि चरित्रवान, सेवाभावी, राष्ट्रनिष्ठ और कर्तव्यपरायण नागरिक बनाना है। वे स्पष्ट कहते हैं कि यदि शिक्षा का केंद्रबिंदु केवल नौकरी प्राप्ति बन जाए, तो शिक्षा अपनी आत्मा खो देती है।

उनके विचार में शिक्षा-व्यक्ति को समाज और राष्ट्र के प्रति जवाबदेह बनाती है, उसके भीतर आत्मसम्मान और आत्मचेतना जगाती है, तथा ज्ञान को केवल साधन नहीं, जीवन-धर्म के रूप में स्थापित करती है। उपाध्याय जी के अनुसार, शिक्षा राष्ट्र-निर्माण का साधन है न कि मात्र व्यक्तिगत उन्नति का माध्यम।

मातृभाषा आधारित शिक्षा : ज्ञान और संस्कृति का प्राकृतिक माध्यम

उपाध्याय जी मातृभाषा और भारतीय भाषाओं में शिक्षा के सबसे बड़े समर्थक थे। उनका कहना था कि विद्यार्थी का मानसिक विकास, उसकी सृजनात्मकता और सोचने-समझने की क्षमता, मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने पर अधिक प्रभावी होती है।

वे तर्क देते थे कि विदेशी भाषा (विशेषतः अंग्रेजी) को शिक्षा का मुख्य माध्यम बनाने से मानसिक दूरी उत्पन्न होती है, विद्यार्थी अपने समाज और संस्कृति से कटने लगता है, श्रम, कृषि और पारंपरिक व्यवसायों के प्रति हीनभावना पैदा होती है, और एक मानसिक उपनिवेशवाद विकसित होता है।

उनके अनुसार मातृभाषा केवल भाषा नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति, परंपरा, मूल्यों और सामुदायिक चेतना की वाहक है। NEP-2020 का मातृभाषा-आधारित शिक्षा का प्रावधान उपाध्याय जी की इसी वैचारिक विरासत की आधुनिक पुनर्पुष्टि है।

शिक्षा में स्वदेशी दृष्टिकोण : आत्मनिर्भरता का आधार

उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ स्वदेशी था। वे स्वदेशी को केवल आर्थिक या उत्पादन-व्यवस्था की अवधारणा नहीं मानते थे, बल्कि स्वदेशी हमारे विचार, व्यवहार, शिक्षा और ज्ञान के हर स्तर का मूल तत्व है। उनके अनुसार शिक्षा-पद्धति विदेशी मानसिकता से प्रेरित नहीं होनी चाहिए। भारतीय समाज की संरचना, प्रकृति, परंपराएँ, लोकजीवन, आर्थिक वातावरण और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही शिक्षा-पद्धति का निर्माण होना चाहिए। वे आधुनिक विषयों और विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विरोधी नहीं थे, बल्कि उसका भारतीयकरण और मानवीयकरण आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी हो जो समाज की स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप कौशल प्रदान करे, ग्राम-आधारित अर्थव्यवस्था और परंपरागत व्यवसायों को मजबूत बनाए और आत्मनिर्भर विकास की दिशा में मार्ग प्रशस्त करे।

कौशल-आधारित, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का महत्त्व

उपाध्याय जी ने भारत की सबसे बड़ी समस्या को "डिग्रीधारी बेरोजगारों की बढ़ती फौज" बताया। उनका कहना था कि डिग्री आधारित शिक्षा युवाओं को श्रम, कारीगरी और लघु उद्योगों से दूर ले जाती है। इसी समस्या से निपटने के लिए उन्होंने बहुत पहले ही कौशल-आधारित शिक्षा पर जोर दिया था—

- विद्यालय स्तर से ही व्यवसाय—कारपेंटरी, हस्तशिल्प, कृषि, मशीनरी, हथकरघा—का प्रशिक्षण
- 10वीं–12वीं तक विद्यार्थी किसी न किसी व्यवसाय में दक्ष हो जाए
- उच्च शिक्षा केवल उन लोगों को मिले जिन्हें उसकी आवश्यकता हो

वे मानते थे कि "युवा नौकरी मांगने वाले नहीं, नौकरी देने वाले बनें।" आज की स्किल इण्डिया मिशन, पीएम-विश्वकर्मा योजना, आईटीआई मॉडल आदि उपाध्याय जी की इसी तकनीकी-व्यावसायिक शिक्षा की परिकल्पना से प्रेरित हैं।

शिक्षा और संस्कृति का अभिन्न संबंध

उपाध्याय जी के लिए शिक्षा और संस्कृति एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते। उनके अनुसार शिक्षा संस्कृति का वाहक है और संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है तथा आत्मा से कटकर शिक्षा केवल तकनीकी ज्ञान बनकर रह जाती है। वे देखते थे कि अंग्रेजी-मिशनरी शिक्षा ने भारतीय संस्कृति और धार्मिक परंपराओं को कमतर दिखाने की कोशिश की, जिससे युवा अपनी जड़ों से दूर होने लगे। उनके अनुसार ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति में अपनी भाषा के प्रति गौरव, अपनी संस्कृति और धर्म के प्रति सम्मान, तथा मातृभूमि के प्रति समर्पण पैदा करे, वह अधूरी है।

शिक्षा में नैतिक मूल्यों और चरित्र-निर्माण की आवश्यकता

उपाध्याय जी महात्मा गांधी की भांति शिक्षा में नैतिकता और चरित्र-शिक्षा को मुख्य स्थान देना चाहते थे। वे कहते थे—"यदि शिक्षा चरित्र नहीं बनाती, तो वह अधूरी और निरर्थक है।" उनके अनुसार शिक्षा सिर्फ ज्ञान या कौशल का संचय नहीं, बल्कि सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, अनुशासन, ईमानदारी और जिम्मेदारी जैसे गुणों का विकास भी करना चाहिए। आज जब शिक्षा का व्यवसायीकरण और मूल्यहीनता बढ़ रही है, उपाध्याय जी का यह तत्व और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

शिक्षक की भूमिका : शिक्षा-दर्शन का केंद्रीय सूत्र

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा-दर्शन में शिक्षक की भूमिका अत्यंत केंद्रीय और निर्णायक है। उनके अनुसार शिक्षा का वास्तविक अर्थ तभी सार्थक होता है जब उसके केंद्र में एक ऐसा शिक्षक हो जो केवल पाठ्य-पुस्तकों का ज्ञाता न होकर, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक, चरित्रवान, आचरण-संपन्न और सांस्कृतिक दृष्टि से परिपक्व हो। उन्होंने स्वयं अनुभव किया था कि शिक्षकों के भीतर यदि समाज-जीवन की गतिविधियों से दूरी बढ़ जाती है, तो वे शिक्षा को एक जीवंत प्रक्रिया के रूप में नहीं देख पाते, जिसके कारण छात्र भी शिक्षा को केवल परीक्षा, अंक और प्रमाण पत्र तक सीमित समझने लगते हैं।

उपाध्याय जी कहते हैं कि गुरु-शिष्य संबंध शिक्षा की आत्मा है। यह संबंध केवल पाठ देने और पाठ सुनने का नहीं, बल्कि 24 घंटे की जागरूकता और आत्मीयता का संबंध है, जहाँ शिक्षक शिष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व निर्माण की चिंता करता है—उसके व्यवहार, संस्कार, सामाजिक उत्तरदायित्व, नैतिकता और राष्ट्र के प्रति उसकी समझ—सब पर नजर रखता है। उन्होंने लिखा है कि शिक्षक का दायित्व केवल बौद्धिक विकास करना नहीं, बल्कि शिष्य के जीवन में वे मूल्य स्थापित करना है जो उसे समाजोपयोगी और राष्ट्रहितैषी बनाते हैं। यह दायित्व इतना महत्वपूर्ण है कि इसे कोई अन्य पेशा पूरा नहीं कर सकता।

अपने लेख में उपाध्याय जी यह भी बताते हैं कि स्वतंत्रता-पूर्व और प्रारंभिक स्वतंत्रता-काल में शिक्षकों का आर्थिक और सामाजिक स्तर अपेक्षाकृत निम्न था, जिसके कारण उनके गुरुजी ने स्वयं उन्हें मास्टरी के पेशे में आने से मना किया था। वे कहते हैं कि शिक्षक को केवल जीविकोपार्जन का साधन न मानकर उसे राष्ट्र-सेवा का माध्यम माना जाना चाहिए, क्योंकि शिक्षक के आचरण से ही शिष्य का चरित्र बनता है, और वही चरित्र आगे चलकर राष्ट्र के चरित्र का रूप लेता है।

आज जब शिक्षण व्यवसाय बाज़ारीकरण, प्रतिस्पर्धा, नौकरी दबाव और मूल्यहीनता से प्रभावित होने लगा है, उपाध्याय जी की यह चेतावनी और भी प्रासंगिक हो उठती है कि यदि शिक्षक समाज से कट जाएगा, तो शिक्षा समाज को दिशा नहीं दे पाएगी, और राष्ट्र का नैतिक बल कमजोर हो जाएगा। उनका मानना था कि अनुशासनहीनता का कारण छात्र नहीं, बल्कि वह व्यवस्था है जो शिक्षक को प्रेरक, आदर्श और मार्गदर्शक की भूमिका निभाने से रोकती है। इसलिए उनकी दृष्टि में उत्कृष्ट शिक्षक ही उत्कृष्ट शिक्षा और उत्कृष्ट राष्ट्र दोनों के निर्माता हैं।

एकात्म मानववाद : शिक्षा-दर्शन का दार्शनिक आधार

उपाध्याय जी के शिक्षा-दर्शन का सबसे गहन तत्व है—एकात्म मानववाद, जिसे उन्होंने 1965 में प्रतिपादित किया। एकात्म मानववाद के संदर्भ में उपाध्याय जी यह स्पष्ट करते हैं कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य में उन चतुर्विध स्तरों—

ISSN 2348-3857

देह, मन, बुद्धि और आत्मा—का समन्वित विकास करना है, जो उसे केवल ज्ञानवान या आर्थिक रूप से सक्षम नहीं बनाते, बल्कि उसे समर्पित, संतुलित, सुसंस्कृत, समाजबंधु, प्रकृतिसंवादी और राष्ट्रनिष्ठ जीवनदृष्टि से संपन्न ऐसा संपूर्ण मानव बनाते हैं, जो अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं और राष्ट्र के व्यापक हितों के बीच नैतिक सामंजस्य स्थापित कर सके; इस दार्शनिक आधार में पश्चिमी विचारधाराओं—साम्यवाद, पूँजीवाद और उपभोक्तावाद—के विखंडनकारी प्रभाव का आलोचनात्मक प्रतिवाद भी शामिल है, क्योंकि उपाध्याय जी मानते हैं कि इन विचारधाराओं की जड़ें मानव जीवन के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पक्षों को उपेक्षित कर देती हैं और शिक्षा को केवल उत्पादन, उपभोग और आर्थिक स्पर्धा की दिशा में मोड़ देती हैं, जबकि एकात्म मानववाद शिक्षा को एक ऐसी जीवन-प्रक्रिया के रूप में देखता है जो व्यक्ति और समाज, भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक संवर्धन, व्यवहारिक कौशल और सांस्कृतिक चेतना—सभी के मध्य एक सजीव, संतुलित और स्वदेशी तादात्म्य स्थापित करती है।

एकात्म मानववाद की सबसे मौलिक विशेषता यह है कि यह मनुष्य, समाज, प्रकृति और राष्ट्र—इन चारों को परस्पर विरोधी इकाइयों के रूप में नहीं, बल्कि एक ही जीवंत तंत्र के अभिन्न अंगों के रूप में देखता है, जहाँ शिक्षा वह माध्यम बनती है जो व्यक्ति के भीतर इन इकाइयों के प्रति संतुलित और समन्वित चेतना का उदय करती है। उपाध्याय जी का कहना था कि पश्चिमी शिक्षा-पद्धति मनुष्य को केवल "आर्थिक इकाई" या "राजनीतिक मतदाता" के रूप में देखती है, जबकि भारतीय दृष्टि उसे चिरंतन आध्यात्मिक शक्तियों वाला ऐसा प्राणी मानती है जिसके भीतर प्रकृति, समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व जन्मजात रूप से विद्यमान होता है; इसलिए शिक्षा का उद्देश्य उस अंतर्निहित उत्तरदायित्व को जागृत करके व्यक्ति को कर्तव्यनिष्ठ, सत्यनिष्ठ और संतुलित जीवन की ओर ले जाना है। इसी कारण एकात्म मानववाद शिक्षा को केवल सूचना-संचय या प्रतिस्पर्धा का साधन नहीं मानता, बल्कि उसे जीवन की संपूर्णता, मनुष्य की संवेदनशीलता, सामाजिक बंधुत्व, सांस्कृतिक निरंतरता और राष्ट्रीय आत्मगौरव को पोषित करने वाली प्रक्रिया के रूप में विकसित करना चाहता है। इस दर्शन के तहत तैयार की गई शिक्षा न केवल व्यक्ति के बौद्धिक क्षितिज को विस्तृत करती है, बल्कि उसे यह भी सिखाती है कि ज्ञान का उपयोग केवल व्यक्तिगत सफलता के लिए नहीं, बल्कि समाज के उत्थान और राष्ट्र के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए।

उपाध्याय जी का शिक्षा-दर्शन भारतीय शिक्षा को एक स्वदेशी, मानव-केंद्रित, नैतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी दिशा देता है। आज जब भारत अपनी शैक्षणिक नीतियों को नए सिरे से गढ़ रहा है, उपाध्याय जी का यह शिक्षा-दर्शन आधुनिक समय के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एक दूरदर्शी शिक्षाविद तथा राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन का स्वप्न देखा था। इस स्वप्न को साकार करने के लिए उन्होंने अनथक परिश्रम किया। मातृभाषा हिंदी तथा भारतीय भाषाओं को दैनिक जीवन का आधार माना था। देववाणी संस्कृत में ही भारतीय विज्ञान के अपरिमित, असंख्य, अनगिनत भंडार भरे पड़े हैं। यह भारतीय सांस्कृतिक विरासतों का अक्षय भंडार है, लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा का बाजारीकरण, भूमंडलीकरण तथा औद्योगिकरण हो चुका है। उपाध्याय जी का शिक्षा-दर्शन भारतीय शिक्षा को एक स्वदेशी, मानव-केंद्रित, नैतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रवादी दिशा देता है। आज जब भारत अपनी शैक्षणिक नीतियों को नए सिरे से गढ़ रहा है, उपाध्याय जी का यह शिक्षा-दर्शन आधुनिक समय के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

संपूर्ण भारतवर्ष में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन युवाशक्ति पाश्चात्य संस्कृति में डूबती जा रही है। आज के युवाओं का प्रमुख लक्ष्य ड्रिंक, ड्रग और डांस हो चला है। उनका अत्यधिक जोर भोगवाद पर है। वे अत्यधिक धन उपार्जित करना चाहते हैं ।संपूर्ण भारतवर्ष में वृद्ध आश्रमों की संख्या बढ़ रही है। आज यदि दीनदयाल उपाध्याय जी होते तो मूल्य शिक्षा पर उनका अत्यधिक जोर होता तथा निजी शिक्षा पर अंकुश लगाते।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संपूर्ण गांधी वांग्मय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, खंड 1-100, 1967, पृ.सं. 1-2
2. शर्मा, डॉ. महेश चंद्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांगमय,प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, खंड-2, 2016, पृ.सं. 15-16

3. संपूर्ण गांधी वांग्मय, पूर्वोक्त, पृ.सं. 134-135
4. पंडित मदनमोहन मालवीय संपूर्ण वांग्मय, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, खंड-9, 2023, पृ.सं. 19,
6. जैन, डॉ. सुमन, शिक्षा और शिक्षकों की रचनाधर्मिता, आचार्य कुल प्रकाशन, नवोदित नगर विस्तार, वाराणसी, 2004, पृ.सं. 39
7. गांधी, मोहनदास करमचंद, विद्यार्थियों से, सस्ता साहित्य मंडल, अहमदाबाद, पृ.सं. 40-41
8. शेषाद्री, हो.वे., प्रबोधन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, 2007, पृ.सं. 65-66